© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 06 | July - September 2018

यौगिक साहित्य में वर्णित चित्त प्रसादन के विविध साधन।

डा॰ विरेन्द्र कुमार[1] , सोनिया[2]

सहायक प्राध्यापक, योग विज्ञान , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

एम॰ए॰ योग द्वितीय वर्ष , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

ISSN 2454-308X
9 770024 543081

दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति और आनन्दमय परमात्मा की प्राप्ति चाहने वाले को चित्त निर्मल करना होगा। इसके अतिरिक्त और कोई अन्य उपाय नहीं है, परन्तु चित्त स्वभाव से ही बड़ा चंचल और बलवान् है। चित्त को वश में करना कठिन है, असंभव नहीं और इसके वश में किए बिना दु:खों की निवृत्ति नहीं होती। अतएव इसे वश में करना चाहिए। इसके लिए सबसे पहले इसका साधारण स्वरूप और स्वभाव जानने की आवश्यकता है। यह आत्म और अनात्म पदार्थ के बीच में रहने वाली एक विलक्षण वस्तु है। यह स्वयं अनात्म और जड़ है, परन्तु बंधन और मोक्ष इसके अधीन है। जब मनुष्य योग दर्शन के नियमों के अनुसार ऐसी साधना कर लेता है जिससे चित्त पुरुष के इच्छानुसार किसी स्थान में रोकने से वहीं पर स्थिर रह जाए। इसी से चित्त उस विषय में प्रवृत्त होता है।

श्रीमद्भगवत गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि – जिसका चित्त वश में नहीं है, उनके लिए योग को प्राप्त करना अत्यंत कठिन है, यह मेरा मत है, परंतु चित्त को निर्मल किए हुए प्रयत्नशील पुरुष साधन द्वारा योग प्राप्त कर सकते हैं।(1)

शंकराचार्य ने कहा है कि – जगत को किसने जीता? जिसने मन अथवा चित्त को जीत लिया।(2)

श्रीमदभगवद् गीता में श्रीकृष्ण जब संशयग्रस्त अर्जुन को यह समझा रहे थे कि योग की उत्तम स्थिति को किस प्रकार प्राप्त किया जाता है, तब अर्जुन हताश मन से श्रीकृष्ण से कहते हैं कि – हे कृष्ण यह मन बहुत ही चंचल, प्रथमन, स्वभाववाला, बड़ा दृढ़ और बलवान है। इसलिए इसको वश में करना। मैं वायु को रोकने की भांति अत्यंत दुष्कर मानता हूँ।(3)

इससे हमें यह न समझ लेना चाहिए कि जो बात अर्जुन के लिए इतनी कठिन थी वह हमारे लिए कैसे संभव होगी। चित्त को जीतना कठिन अवश्य है, श्रीकृष्ण ने इस बात को स्वीकार किया, पर साथ ही इसके प्रसादन का साधन भी बता दिया।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि – 'हे अर्जुन! इसमें कोई संदेह नहीं कि इस चंचल चित्त का विग्रह करना बड़ा ही कठिन है, परन्तु अभ्यास और वैराग्य से यह वश में हो सकता है अर्थात् इसको निर्मल एवं पवित्र किया जा सकता है।(4)

इससे यह सिद्ध हो गया है कि चित्त का ठहराव कठिन भले ही है, परन्तु असंभव नहीं

इस तरह यौगिक साहित्यों में चित्त प्रसादन के अनेक साधन बताएं गए हैं। चित्त वृत्तियों का प्रवाह परंपरागत संस्कारों के बल से सांसारिक भोगों की ओर चलता है और उसे कल्याण मार्ग में लाने का कार्य ये साधन करते हैं, जिनका कम्रिक वर्णन निम्नांकित है–

1. **अभ्यास और वैराग्य –** जब तक संसार की वस्तुएँ सुन्दर और सुखप्रद मालूम होती है तब तक चित्त रमणीय और सुखरूप दिखने वाली वस्तुओं में लगा रहता है। साधारणतया यही चित्त का स्वरूप व स्वभाव है। इन सांसारिक वस्तुओं से चित्त को हटाने के लिए 'अभ्यास व वैराग्य' ही बताया है जिससे चित्त का अनुराग उनसे हटे। इसलिए 'योग दर्शन' में महर्षि पतंजलि ने कहा है –

चित्त की शुद्धि अथवा निरोध करने के लिए अभ्यास और वैराग्य आवश्यक है। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भी दो सूत्र महत्त्वपूर्ण हैं – अभ्यास और वैराग्य।

'अभ्यास' का अर्थ है – पुनः प्रयास करना अथवा प्रक्रियाओं को बार–2 दोहराना और 'वैराग्य' का अर्थ है – राग रहित होना।[(5)]

इस प्रकार चित्त के ठहराव के लिए इस लोक और परलोक के समस्त पदार्थों में दोष और दुःख की प्रवृत्ति को देखना होगा, जिससे चित्त का अनुराग उनसे हटे। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि – इस लोक और परलोक के समस्त भोगों में वैराग्य, (राग रहित), अहंकार का त्याग, जन्म–मृत्यु, बुढ़ापा और रोगादि दुःख एवम् दोष देखने चाहिए। इस प्रकार वैराग्य की भावना से चित्त निर्मल हो सकता है।[(6)]

स्वामी हरिहरानन्द आरण्य भी कहते हैं कि – चित्त नामक नदी दोनों दिशाओं में बहती है। वह कल्याण की ओर भी बहती है और पाप की ओर भी। जो विवेक विषयरूप निम्न मार्ग से जाती है और कैवल्य रूप उच्चभूमि तक बहती है वह कल्याण कहा है।

टीका 12(1) अभ्यास और वैराग्य मोक्ष साधना के साधारण तम उपाय है।[(7)]

इस प्रकार चित्त में वैराग्य होने पर ही व्यक्ति सही अर्थों में संसार–सागर को पार कर सकता है और अभ्यास से चित्त को विवेकज्ञान की ओर एकाग्र किया जाता है।

2. **चार भावनाएं –** मैत्री – करुणा – मुदिता – उपेक्षा – योग दर्शन में महर्षि पतंजलि एक साधन यह भी बतलाते हैं –

सुखी मनुष्यों में मित्रता की भावना करने से, दुःखी मनुष्यों में दया की भावना करने से, पुण्यात्मा पुरुषों में प्रसन्नता की भावना करने से और पापियों में उपेक्षा की भावना करने से चित्त के राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मलों का नाश हो जाता है और चित्त शुद्ध व निर्मल हो जाता है। अतः साधक को इसका अभ्यास करना चाहिए।[(8)]

स्वामी हरिहरानंद आरण्य भी कहते हैं कि – उनमें सुखसंभोग प्राणियों में मित्रता की भावना, दुःखी प्राणियों में करुणा की भावना, पुण्यात्माओं में प्रसन्नता की भावना और अपुण्यात्माओं के प्रति क्रोध या बदले की भावना न रखकर उनकी अवहेलना करनी चाहिए। इस प्रकार भावना करते–2 शुक्ल धर्म उत्पन्न होते हैं जिससे चित्त प्रसन्न होता है।

3. **प्राणायाम का अभ्यास –** यौगिक साहित्य में चित्त प्रसादन हेतु प्राणायाम का अभ्यास भी साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी संदर्भ में महर्षि पतंजलि कहते हैं कि –

प्राण का प्रच्छार्दन अथवा श्वास को शरीर से बाहर निकालने तथा यथाशक्ति श्वास को बाहर रोकने का अभ्यास करने से भी चित्त में निर्मलता व ठहराव आता है। इससे शरीर की नाड़ियों के मल भी नष्ट हो जाते हैं।(9)

स्वामी हरिहरानंद आरण्य के अनुसार – भीतरी हवा को दोनों नासापुटो से प्रयत्न विशेष के साथ वमन करना अथवा श्वास को बाहर निकालना का अभ्यास करने से भी चित्त स्थिर हो जाता है।(10)

इस तरह मनुमहाराज भी कहते हैं कि – जिस प्रकार अग्नि तपाने पर धातु का मल जाता है अथवा नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार प्राणवायु को धारण करने से इन्द्रियों के सारे दोष दूर हो जाते हैं। (मनुस्मृति)(11)

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि – कई अपान वायु में प्राणवायु को हवन करते हैं, कई प्राणवायु में अपानवायु को होमते है और कई प्राण और अपान वायु की गति को रोककर प्राणायाम करते हैं। अथवा श्वास–प्रश्वास की गति को रोकना ही प्राणायाम है।(12)

4. **एक तत्व का अभ्यास करना –** योगदर्शन में महर्षि पतंजलि लिखते हैं – चित्त का विक्षेप दूर करने के लिए पांच तत्वों में से किसी एक तत्व का अभ्यास करना। एक तत्व के अभ्यास का अर्थ है – किसी एक वस्तु या एक चिह्न को एक दृष्टि से देखते रहना। जब तक आंखों की पलक न पड़े या आंखों में जलन न आ जायें। फिर धीरे–2 चिह्न को छोटा करते रहे तथा अंत में उस चिह्न को भी हटा देना चाहिए। इस प्रकार अवलोकन न करने पर भी दृष्टि स्थिर रहें।

इस प्रकार इसका नियमित अभ्यास करने से चित्त को स्थिर किया जाता है। इसे 'त्राटक' क्रिया भी कहते हैं।(13)

5. **चित्त को परमात्मा में लगाना –** मनुष्य का चित्त बहुत ही चंचल होता है। वह एक जगह या स्थान पर नहीं ठहर पाता। इसलिए इसको एक जगह पर स्थिर करने के लिए परमात्मा में लगाना चाहिए। इसी संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि – यह मन बहुत ही चंचल व अस्थिर है तथा यह जहाँ–जहाँ दौड़कर जाय, वहाँ–वहाँ से इसे हटाकर बार–बार परमात्मा में ही लगाना चाहिए।(14)

जब चित्त को परमात्मा में लगाने लगे तो, तब अभ्यास से विषयों में दुःख और परमात्मा में परम सुख प्रतीत होने लगेगा, तब यह स्वयं ही विषयों को छोड़कर परमात्मा की ओर दौड़ेगा, परंतु जब तक चित्त स्थिर न हो जाए, तब इसका निरंतर अभ्यास करते रहना। जिन–जिन कारणों से चित्त सांसारिक पदार्थों में लगे, उसे वहाँ से रोककर परमात्मा में स्थिर करें। आज स्थिर न हुआ तो कभी न कभी तो होगा, इस लिए श्रीकृष्ण ने कहा है –

'धीरे–धीरे अभ्यास करता हुआ उस परमात्मा को प्राप्त हो, धैर्य युक्त बुद्धि से चित्त को परमात्मा में स्थिर करके अन्य किसी भी विचार को मन में न आने दें। अतः ऐसा करने से चित्त स्थिर व निर्मल रह सकता है।[(15)]

6. **स्वप्न और निद्रा के ज्ञान का आलंबन –** चित्त का ऐसा स्वभाव है कि वह किसी एक विषय पर यदि स्थैर्य रखें तो वह अन्य विषयों पर भी कर सकता है। इस प्रकार शुद्ध, सत्वयुक्त चित्त के स्वप्न तथा निद्रा द्वारा भी चित्त को निर्मल किया जा सकता है। इसी संदर्भ में महर्षि पंतजलि कहते हैं कि – जो चित्त के स्वप्न एवं निद्रा के ज्ञान का अवलंबन कर लेता है, उसका चित्त भी स्थिर हो जाता है।[(16)]

   स्वामी हरिहरानन्द आरण्य कहते हैं – 'स्वप्न ज्ञान तथा निद्राज्ञान का आलंबन करके भी चित्त एकाग्र हो सकता है।'[(17)]

   स्वामी विवेकानन्द – कभी–कभी मनुष्य ऐसा स्वप्न देखता है कि उसके पास स्वयं परमात्मा आकर बात कर रहे हैं, वह मानों एक प्रकार से भावनाओं में डूब रहा है और ऐसा महसूस करता है कि वायु में एक संगीत की ध्वनि बह रही है और वह उसे सुन रहा है, लेकिन जब वह जाग्रतावस्था में आता है तो वे स्वप्न की घटनाएँ उसके चित्त पर गहरी छाप छोड़ जाती है। इस प्रकार उस स्वप्न को सत्य मानकर उसका ध्यान करो।

7. **सद्ग्रन्थों का अध्ययन –** उपर्युक्त साधनों के विवरण के अतिरिक्त सद्ग्रन्थों का अध्ययन करके भी साधक चित्त को एकाग्र कर सकता है। इसलिए एकान्त में बैठकर उपनिषद्, श्रीमदभगवद्गीता, रामायण, वेदों आदि ग्रंथों का अर्थसहित अनुशीलन करने से वृत्तियां तदाकार बन जाती है, अर्थात् मनुष्य की इन्द्रियां बाहरी विषयों से हटकर आंतरिक अध्ययन में लीन हो जाती है। इस प्रकार परमात्मा के परम् रहस्य संबंधी परमार्थ ग्रंथों के पठन–पाठन द्वारा भी चित्त स्थिर होता है।

उपसंहार – अतः स्पष्ट है कि चित्त को स्थिर करके परमात्मा में लगाने के अनेक साधन और युक्तियाँ है। इसलिए यदि चित्त को स्थिर शांत, सशक्त व सुदृढ़ बनाना है तो चित्त की कमजोरियों को पहचानना होगा, संघन आसक्तियों को दूर करना होगा और चित्त में वैराग्य का प्रकाश जगाना होगा, इसके लिए सन्यासी या वैरागी बनने की जरूरत नहीं, बल्कि वैराग्य का अभ्यास करने की जरूरत है और वह भी संसार में रहकर।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. असयतात्मना योगो दुष्प्राप इति में मतिः।
   वश्यात्मना तु यतता शकयोऽवाप्तुमुपायत।। (गीता 6/36)
2. जितं जगत् केन, मनो हित येन। (योगाड्क) पृष्ठ 424
3. चत्रचलं हि मनः कृष्ण प्रमायि बलवददृढ़म्।
   तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। (गीताः 6/34)
4. असंशय महाबाहों मनो दुनिग्रहं चलम्।
   अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृहयते।। (गीता – 6/35)
5. अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः। (पां. यो. सू. 1/12)
6. इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमह्महंकार एव च।
   जन्ममृत्युजरा व्याधि दुःख दोषानु दर्शनम्।। (गीता – 13/8)
7. चित्तनदी नाम उभयातो वाहिनी, वहति कल्याणाय, वहति पापाय च।
   या तु कैवल्य प्राग्यारा विवेक विषया निम्ना सा कल्याणवहा।।
   (पां. यो. दर्शन – टीका 12 (1) स्वामी हरिहरानन्द आरण्य)
8. मैत्री करूणा मुदितोपेक्षाणां, सुख–दुःख पुण्या पुण्य विषयाणां, भावनातश्यित् प्रसादनम्।
   (पां. यो. सू. 5/33)
9. प्रच्छर्छन विधारणाभ्यां वा प्राणस्या। (पां. यो. दर्शन – 1/34)
10. कौष्ठयस्य वायोर्नासिका पुराभ्यां प्रयत्न विशेषाद वमनं प्रच्छर्दनम् विधारणं प्राणायामः।
    ताभ्यां वा मनस् स्थिति सम्पादयेत्।। (पां. यो. दर्शन ।।34।।)
    (स्वामी हरिहरानन्द आरण्य
11. दध्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
    तथेद्रियाणां दध्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।। (मनुस्मृति)
12. अपाने जुहयति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
    प्राणा पानगत रूढध्वा प्राणायाम परायणः।। (गीता – 4/29)
13. तत्प्रतिषेधार्थ मेक तत्वाभ्यासः। (पां. यो. सूत्र – 1/32)
14. यतो यतो निश्चरति मनश्चलम स्थिरम्।
    ततस्तो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।। (गीता – 6/26)
15. शनैः शनैः रूपरमेद् बुद्धया धृतिग्रहीतया।
    आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।। (गीता – 6/25)
16. स्वप्ननिद्राज्ञानालंबन वा। (पां. योगसूत्र 1/38)
17. स्वप्न ज्ञानालंबनं निद्राज्ञाना लम्बनं वा तक्षकारं योगिनश्चित स्थितिपदं लभत
    इति।। 38।। (पां. योगदर्शन)

संदर्भ सूची

1. अखण्ड ज्योति। (मई, 2018)
2. श्रीमद् भगवद्गीता – गीताप्रैस गोरखपुर।
3. योगाड्क (दसवें वर्ष का विशेषांक) गीताप्रैस गोरखपुर।
4. डा. इन्द्राणी – पांताजल योगसूत्र के आधारभूत तत्व।
5. स्वामी हरिहरानन्द आरण्य – पातंजल योग दर्शन।
6. महर्षि पंतजलि – पांताजल योग दर्शन (गीताप्रैस गोरखपुर)
7. स्वामी विवेकानन्द (राजयोग)